आत्ममुग्धता के समानांतर संवेदनशील पाठ

निरंजन सहाय*

कविता क्या है? इस मुद्दे पर बहस उतनी ही पुरानी है, जितनी कविता। क्या कविता महज शब्दों की तुकबंदी है? अलंकार और शब्द चयन की कथन भंगिमाओं का युगसत्य और जुगलबंदी के साथ कविता की और कौन-सी विशेषताएँ हो सकती हैं? कविता के कालजयीपन के साथ पाठक-श्रोता का कौन-सा रिश्ता है? कविता की वंशगत विशिष्टता क्या है? पुरानी कविता और नयी कविता के पाठ में कौन-से अंतर हैं? इन सभी मुद्दों पर विचार के साथ कविता की दुनिया में प्रवेश कई तरह से दिलचस्प है। इस शोध आलेख में इन सभी मुद्दों को समझने-विश्लेषित करने का प्रयास है। प्राय: कविता के मूल्यांकन और पाठ में एकरूपता का पालन कविता के मर्म तक पहुँचने में सबसे बड़ी बाधा करती है। यह सही है कि कविता में कुछ सार्वभौम विशेषताएँ होती हैं, पर यह भी सही है कि प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक कविता के पाठ के अलग-अलग मानकों को समझे-जाने बिना कविता का सही पाठ संभव नहीं है। आइए इन्हें समझने का प्रयास करें।

पिछले दिनों एक साक्षात्कार में हिंदी के वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी ने हिंदी अध्यापकों के बारे में एक राय दी। बकौल अशोक वाजपेयी हिंदी की दुर्दशा के पीछे हिंदी अध्यापकों की प्रमुख भूमिका मानते हैं।[1] अब यह बात कितनी तर्कसंगत है, इस पर परस्पर विरोधी राय बनायी जा सकती है। लेकिन इस सच्चाई से इनकार करना भी मुमकिन नहीं कि हिंदी अध्यापन का एक सिरा महज खानापूर्ति में सिमट कर रह गया है। इसके पीछे अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें कुछ पर नज़र डालना मुनासिब होगा। उदाहरण के लिए, आम तौर पर, अध्यापन में कुछ सवालों की अनदेखी होती है, जैसे—साहित्य की भाषा और इससे इतर ज्ञान की भाषा में बुनियादी फर्क क्या है? विधाओं के स्वरूप में अंतर को कैसे व्याख्यायित किया जाए? पाठ को पढ़ते समय कौन-सी विधि अपनायी

**एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* हिंदी तथा आधुनिक भाषा विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, (उ.प्र)

जाए कि कोई साहित्यिक विधा न सिर्फ अपने पूरे स्वरूप में संबोधित कक्षा तक पहुँचे, अपितु उसकी अनुगूँज विद्यार्थी की स्मृति का हिस्सा भी बन जाए। उसी तरह प्रत्येक साहित्यिक विधा का एक विशिष्ट अतीत भी होता है, जिसके आलोक में उसका वर्तमान मुखर होता है। कहना न होगा कि अध्यापन-संसार का एक बड़ा हिस्सा रचनाओं का देश-काल निरपेक्ष ऐसा आत्ममुग्ध पाठ करता है, जिसमें उल्लिखित सवालों की अनदेखी होती है। इस शोध पत्र का उद्देश्य साहित्य की विभिन्न विधाओं के अध्यापन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियों के कतिपय प्रसंगों का विश्लेषण है। वैसे विश्लेषण के पहले यह उल्लेख कर देना भी ज़रूरी है कि प्राय: अध्यापक की कुछ निजी विशेषताएँ होती हैं, जिनके चलते उसका अध्यापन एक उल्लेखनीय संदर्भ बनता है। लिहाजा इस सिलसिले में सर्वस्वीकृत राय बना पाना संभव नहीं। बावजूद इसके इन आधारभूत प्रसंगों का अपना महत्त्व है।

सबसे पहले यह देखें कि कविता का अध्यापन करते समय कैसे काव्यलोक में प्रवेश करें। यह बात बार-बार कही जाती है कि प्रत्येक कविता में उसके प्रवेश के सूत्र निहित होते हैं। कई बार मुखर ढंग से तो अनेक बार यह सूत्र नेपथ्य में होता है। लेकिन कविता में महज शब्दार्थ की भूमिका तलाशने वाली निगाह अक्सर यह लक्षित करने से गुरेज़ करती है कि कविता के समग्र प्रभाव में उस अंतर्धारा की क्या भूमिका होती है, जिससे किसी कवि की निजता का निर्माण होता है। कविता में बिंब की उपस्थिति उसे एक स्पृहणीय ऊँचाई देती है। उसे समझना-विश्लेषित करना सामान्यत: अध्यापकों की रुचि का विषय नहीं होता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अर्से पहले एक उल्लेखनीय लेख लिखा था 'कविता क्या है?' उन्होंने उस निबंध में कहा कि- ''काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिंबग्रहण अपेक्षित होता है।[2] यहाँ यह उल्लेखित करना ज़रूरी नहीं कि बिंब कई बार शब्द में निहित होता है तो कई बार वाक्य में और अनेक बार तो पूरी कविता मिलकर एक बिंब का निर्माण करती है। बिंब का मतलब होता है-शब्द (वाक्य या पूरी कविता) में निर्मित चित्र। दो उदाहरणों से इसे समझने की कोशिश करें। एक पुरानी कविता लें-

'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझके कपटी जे निसाँक नहीं।
घन आनंद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तैं दूसरों आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।[3]

कविता के अर्थग्रहण की प्रक्रिया से तो तकरीबन सभी अध्यापक परिचित हो ही जाते हैं। ज़रा बिंबग्रहण के नज़रिये से कविता का भाष्य करें। पहले शब्द के आलोक में देखें। पहली ही पंक्ति में स्नेह के लिए 'सूधो' विशेषण का प्रयोग किया गया है। सूधो यानी सीधा, लेकिन सीधा शब्द से प्रेम में आकंठ डूबे समर्पित प्रेमी का जो बिंब उभरता है, उससे कविता का मंतव्य विशिष्ट ढंग से उभरता है। पुराने काव्यशास्त्री इसे ही 'स्फोट' कहते थे। इसी तरह पूरी पंक्ति, यानी 'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं' से भी एक सघन बिंब उभरता है। सयाने का मतलब है समझदार और बाँका

का मतलब तिरछा होता है। लेकिन प्रेम की राह अत्यंत सीधी है, यहाँ तनिक भी सयानापन या तिरछेपन के लिए जगह नहीं, कहत ही एक विशिष्ट चित्र उभरता है, जिसके आलोक में हम प्रेम के दो ध्रुवांतों को पाते हैं-एक वह जो सीधा और समर्पित है, दूसरा वह जिसमें सयानापन और टेढ़ेपन का चातुर्य है। फिर प्रेम के खेल (नाटक) का फर्क भी पूरी तरह उभरता है। अब एक नयी कविता को बिंबग्रहण के आलोक में समझते हैं-

'पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को
और एक दिन
बिना किसी सूचना के
खच्चर, बैल या भैंस की पीठ पर
घर असबाब लादकर
चल देते हैं कहीं और।[4]

इस कविता में बाढ़ से घिरे जिस इलाके का वर्णन किया गया है, वहाँ हरेक साल तीन-तीन नदियों के बाढ़ का संकट बना रहता है। हर साल लोग बाढ़ से उजड़ते हैं फिर बाढ़ के बाद बसते भी हैं। कविता यदि यथातथ्य वर्णन भर होती तो पाठक एक सामान्य काव्यानुभव से गुज़रता। लेकिन कविता में मौजूद बिंब, जाहिरन जो शब्दों और पंक्ति के साथ ही पूरी कविता में भी मौजूद है, उसे एक विलक्षण काव्यानुभव से संपन्न करती है। प्रार्थना और विश्वास दोनों एक दूसरों के पूरक होते हैं, पर यहाँ वे परस्पर विरोधी ध्रुवों के रूप में मौजूद हैं। शब्द बिंबों के भाष्य से इन शब्दों के तनाव में युग का तनाव झलकता है। एक तरफ संकट के दौर में प्रार्थना ही प्रार्थना की रूढ़ि का नकार और दुनिया बसा लेने का कर्म-सौंदर्य से उपजा विवेक। यदि यह ज़िद ठान लें कि कविता पाठ या अध्यापन के समय महज अर्थग्रहण की परिपाटी ही अपनाएंगे तब जाहिर है, कविता के भाष्य से हम वंचित ही रहेंगे। यानी बिना बिंबों को समझे-भाष्य किये कविता का पठन-पाठन संभव नहीं।

ऐसे कविता रसिक अध्यापकों की भी कमी नहीं जो यह कहते नहीं अघाते कि दम तो पुरानी कविता (यानी छंद, अलंकार और तुकांत पदावली की कविता) में ही था, नयी यानी आधुनिक काल की छंद, अलंकार मुक्त कविता में वह बात नहीं कि वह काव्य-रसिकों को प्रभावित कर सके। लेकिन ऐसी बात कहने वाले यह नज़रअंदाज़ कर जाते हैं कि कविता ज्ञान या कला क अन्य अनुशासनों की तरह अपने समय के विवेक, आकांक्षा और तनावों को प्रकट करती है। सच तो यह है कि प्राचीन या मध्यकालीन कविता और आधुनिक कविता के पाठ की अलग-अलग कसौटियाँ हैं। उन कसौटियों और मानकों को समझे बिना न तो कविता का पाठ संभव है और न ही अध्यापन।

प्राचीन कविता के मूल्यांकन के अनेक आधार हो सकते हैं। मसलन-छंद की मौजूदगी का आकलन, अलंकारों का कथन-भंगिमा के संदर्भ में विश्लेषण। 'तुक' मध्यकालीन कविता और आधुनिक काल के आरंभिक चरणों में लिखी गयी अनेक कविताओं की एक आधारभूत विशेषता है। यहाँ विवरण में जाने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि हिंदी साहित्य का सामान्य पाठक इन संदर्भों से बखूबी परिचित है। असल समस्या इस बात की है कि मुक्त छंद की कविताओं का पाठ, अध्यापन और परीक्षण कैसे हो। प्रायः पुरानी काव्य रुचियाँ

इस मसले पर अपनी अत्यंत सरलीकृत राय देती हैं कि ऐसी कविताओं को कविता नहीं मानना चाहिए। लेकिन सच्चाई कुछ और है, ज़रूरत इस बात की है कि छंद मुक्त कविता या अगेय कविता का पाठ अलग ढंग से हो। आज की कविता अन्य कला-रूपों मसलन-चित्रकला, नाट्यकला के अधिक करीब आयी है। करीब आने के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ हैं। ठीक उसी तरह के सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ थे। कविता पाठ, अध्यापन और मूल्यांकन के समय आधुनिक काल की छंदमुक्त कविता के बहनापे भरे उल्लिखित संदर्भ को याद रखने की ज़रूरत है। बकौल हिंदी कवयित्री अनामिका, 'बहनापा कला माध्यमों में भी होता है! आधुनिक कविता ने गाना छोड़ा तो इसलिए कि विश्वयुद्ध हो या हिंदुस्तान का बँटवारा, बीसवीं सदी के आरंभ में दुनिया खूनमखून हो गयाी!' हर तीसरे घर में एक लाश पड़ी थी। ऐसे में गाया कैसे जाता? एफ.आर.लीविस ने जिस 'म्यूज़िक ऑफ मीनिंग' (अर्थ संगीत) की बात की थी-वह तो कविता में रहा, पर संगीत से ज़्यादा चित्रकला, वास्तुकला और नाट्यकला से अपना गठबंधन कविता ने अधिक मज़बूत किया। कविता बिंबों, संवादों और संदर्भित आख्यानों के चुनिंदा ॠणों में जीवन-जगत की विडंबनाएँ फ्लैश करने लगीं। फोटोग्राफ़ी और सिनेमेटोग्राफी की 'क्षिप्त फोकल शिफ्ट', 'जूम', मोन्ताज' आदि तकनीकों का भी अत्यधिक सर्जनात्मक उपयोग हर अच्छी कविता ने ढंग से किया।'[5] ज़ाहिर है आज की कविता के अध्यापन ही नहीं मूल्यांकन के संदर्भ में भी इन मानकों को याद रखने की ज़रूरत है।

काव्यबोध मूल्यांकन और रूढ़ पद्धतियाँ

यह एक चिंताजनक सच्चाई है कि स्कूल-कॉलेज से विश्वविद्यालयों तक कविता के अध्यापन और परीक्षण के दौरान जिन कौशलों का पारंपरिक रूप से मूल्यांकन होता है, उनमें प्राय: काव्यबोध की समझ विकसित करने का कोई विवेक नहीं होता। मसलन सवाल ऐसे पूछे जाते हैं-'पाठ्यक्रम में शामिल कविता के कथ्य और शिल्प का मूल्यांकन कीजिए', 'सप्रसंग व्याख्या कीजिए' या 'काव्य शीर्षक की प्रासंगिकता पर विचार कीजिए' आदि। ध्यान से देखें तो इन सवालों के माध्यम से न तो कवि की निजता का मूल्यांकन हो पाता है न ही काव्यभाषा की विशिष्टताओं का परीक्षण हो पाता है। जैसे-प्राय: विद्यार्थी अलग-अलग काव्य-विवेक और काव्य-भाषा संपन्न रचनाकारों की भाषा के बारे में राय देते हैं- भाषा सहज, सरल और प्रांजल है। अब कबीर की भाषा भी सरल, सहज और प्रांजल है, साथ ही मुक्तिबोध और केदारनाथ सिंह की भाषा भी सरल, सहज और प्रांजल है। चलते-चलते अलंकारों की कच्ची समझ का भी उल्लेख कर दिया जाता है। ऐसा इसलिए भी होता है कि प्राय: न तो अध्यापक को और न ही विद्यार्थियों को इस बात की चिंता होती है कि कवि की निजता और काव्यभाषा की विशिष्टताओं का विश्लेषण किया जाए, न ही पाठ्यपुस्तक विशेषज्ञों को इसकी समझ या फिक्र होती है। इसी तरह की रूढ़ी अन्य संदर्भों में भी दिखायी देती है। जैसे कोई कविता अपने समय और उसके सपनों में रचे-बसे मनुष्य की सघन चिंता और समग्र नज़रिये के सबसे सघन बिंब को काव्य अभिव्यक्ति में सिरजती

है। पर अध्यापन और मूल्यांकन में ऐसे सरोकारों की अनदेखी की जाती है। प्रायः दो तरह के अध्यापन और परीक्षण का नमूना नज़र आता है। एक वह जो परंपरा से इस कदर सम्मोहित होता है कि अभिव्यक्ति का कोई टटका तरीका उसे अधकचरा और पश्चिमपरस्त लगता है, दूसरी वह जहाँ तात्कालिकता से चौंधियायी आँखों को हर नयी बात को काव्य रूप में ढालने और विश्लेषित करने की हड़बड़ी होती है। इसे और स्पष्ट तरीके से समझने के लिए एक उदाहरण देखें–पहली दृष्टि प्रश्न करती है–'तुलसीदास हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, सारगर्भित विश्लेषण कीजिए' तो दूसरी दृष्टि पूछती है 'तुलसीदास की रचनाएँ सामंती मूल्यों का पोषण करती हैं' तुलसीकाव्य के साक्ष्य पर प्रमाणित करें। जबकि तुलसीदास जैसे बड़े रचनाकार की सृजन यात्रा अनेक कलात्मक और विचारधारात्मक अवसर उपलब्ध कराती है जिसके आलोक में काव्यविवेक के समग्र और संपन्न अनुभव के अवसर स्वभावतः हाँसिल हों, जैसे ऐसे सवाल भी पूछे जा सकते हैं–'तुलसीदास की रचना यात्रा के आधार पर यह बताइए कि कैसे किसी कवि की रचनादृष्टि अपने समय और व्यक्ति संदर्भों के आलोक में विकसित और परिवर्तित होती है' या 'रामचरितमानस और कवितावली की रचनादृष्टि के अंतर को रेखांकित कीजिए' या 'तुलसीदास की रचनाओं के आधार पर यह बताइए कि उनकी काव्यभाषा अपने समय की कलात्मक और लौकिक उपलब्धियों का श्रेष्ठ साक्ष्य प्रस्तुत करती है' या 'तुलसीदास एक साथ अवधी और ब्रजभाषा के विभिन्न कलारूपों और काव्यरूपों को रचनात्मकता में रूपांतरित करते हैं' कैसे आदि-आदि।

पिछले दिनों विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा अध्यापन की अर्हता परीक्षा और फ़ैलोशिप परीक्षा में बदलाव कर दिया है। अब केवल वस्तुनिष्ठ परीक्षा के आधार पर अभ्यर्थी की योग्यता का मूल्यांकन होता है। कहना न होगा इस तरह के परीक्षण ने विद्यार्थी की विश्लेषण क्षमता और किसी रचनाकार के विशिष्ट और वैयक्तिक संदर्भों के अध्ययन-मूल्यांकन को हतोत्साहित ही किया है। अब ज़ोर अधिकाधिक सूचनाओं से लैस हो जाने पर है, पर कोई भी सूचना अंततः मनुष्य और समाज के विवेक निर्माण के लिए ही होती है न कि निर्जीव और तटस्थ संकलन के लिए। उसी तरह जो अध्ययन और मूल्यांकन पद्धति विश्लेषण की योग्यता न पैदा कर सके उससे अधिगम और शिक्षा के लक्ष्य हासिल करना नामुमकिन ही है।

संदर्भ

1. अनामिका, ''कविता के कंधे,'' *कथादेश,* अगस्त 2012, दिल्ली, पृ. 16.
2. घनानंद. *घनानंद कवित्त.*
3. *तहलका.* हिंदी, फ़रवरी 2013.
4. शुक्ल, रामचंद्र. 1983. *कविता क्या है?, चिंतामणि*, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद.
5. सिंह, केदारनाथ. 1983. *यहाँ से देखो.* प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ.17.